

Chapter उन्नीस

पुंसवन व्रत का अनुष्ठान

इस अध्याय में बताया गया है कि कश्यप की पत्नी दिति ने किस प्रकार कश्यप मुनि के भक्ति सम्बन्धी उपदेशों को कार्यरूप में परिणत किया। अग्रहायण (नवम्बर-दिसम्बर) मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को प्रत्येक स्त्री को चाहिए कि वह दिति के चरणचिह्नों का अनुसरण करती हुई और अपने पति के उपदेशों का पालन करती हुई इस पुंसवन व्रत को प्रारम्भ करे। प्रातःकाल हाथ-मुँह धोकर, पवित्र होकर, वह मरूतों के जन्म रहस्य के बारे में सुने, फिर श्वेत वस्त्र धारण करके और समुचित अलंकरणों से आभूषित होकर कलेवा करने के पूर्व भगवान् विष्णु तथा उनकी पत्नी लक्ष्मीजी की पूजा करे और भगवान् विष्णु की कृपा, धैर्य, शक्ति, महानता तथा अन्य गुणों की महिमा तथा साथ ही समस्त वरों को देने के लिए स्तुति करे। वे सभी वर प्रदान कर सकते हैं। पूजा की समस्त सामग्रियाँ—यथा आभूषण, यज्ञोपवीत, सुगंधि, पुष्प, अगुर तथा भगवान् के पाँव, हाथ तथा मुख के प्रक्षालन के लिए जल आदि भेंट करने के बाद भगवान् का इस मंत्र के द्वारा आवाहन करे—ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिम् उपहरामि ॥ तब अग्नि को बारह बार आहुतियाँ दे और इस मंत्र का उच्चारण करे ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा। इस मंत्र का दस बार उच्चारण करते हुए नमस्कार करे। तब लक्ष्मीनारायण मंत्र का जप करे।

यदि गर्भवती स्त्री या उसका पति इस भक्तिपूर्ण व्रत को नियमपूर्वक सम्पन्न करता है, तो दोनों को फल प्राप्त होगा। इस विधि को एक वर्ष तक चालू रखकर संयमशील पत्नी को चाहिए कि कार्तिक पूर्णिमा को उपवास रखे। दूसरे दिन पति पूर्ववत् भगवान् की पूजा करे और फिर अच्छा-

अच्छा भोजन पकाकर ब्राह्मणों को प्रसाद वितरण करके उत्सव मनाए। तब ब्राह्मणों की अनुमति से पति-पत्नी प्रसाद ग्रहण करें। पुंसवन व्रत के फल की महिमा बताने के बाद यह अध्याय समाप्त हो जाता है।

श्रीराजोवाच

व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन्भवता यदुदीरितम् ।
तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने कहा; व्रतम्—व्रत; पुंसवनम्—पुंसवन नामक; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; भवता—आपके द्वारा; यत्—जो; उदीरितम्—कहा गया है; तस्य—उसका; वेदितुम्—जानना; इच्छामि—चाहता हूँ; येन—जिससे; विष्णुः—भगवान् विष्णु; प्रसीदति—प्रसन्न होते हैं।

महाराज परीक्षित ने कहा—हे प्रभो! आप पुंसवन व्रत के सम्बन्ध में पहले ही बता चुके हैं। अब मैं इसके विषय में विस्तार से सुनना चाहता हूँ क्योंकि मैं समझता हूँ कि इस व्रत का पालन करके भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया जा सकता है।

श्रीशुक उवाच

शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्धर्तुरनुज्ञया ।
आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ २ ॥
निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमन्त्र्य च ।
स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालङ्क ताम्बरे ।
पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तं श्रिया सह ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; शुक्ले—शुक्ल पक्ष के; मार्गशिरे—अगहन (नवम्बर-दिसम्बर) मास में; पक्षे—पक्ष (पखवारे) में; योषित्—स्त्री; भर्तुः—पति की; अनुज्ञया—अनुमति से; आरभेत—प्रारम्भ करे; व्रतम्—व्रत; इदम्—यह; सार्व-कामिकम्—समस्त कामनाओं को पूरा करने वाले; आदितः—पहले दिन से; निशम्य—सुनकर; मरुताम्—मरुतों के; जन्म—जन्म, उत्पत्ति; ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों से; अनुमन्त्र्य—उपदेश लेकर; च—तथा; स्नात्वा—नहा कर; शुक्ल-दती—साफ किये गये दाँतों से; शुक्ले—श्वेत; वसीत—धारण करे; अलङ्क ता—आभूषण; अम्बरे—वस्त्र; पूजयेत्—पूजा करे; प्रातः—आशात् प्राक्—कलेवा से पहले; भगवन्तम्—श्रीभगवान् की; श्रिया सह—लक्ष्मी सहित।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा—स्त्री को चाहिए कि अगहन मास (नवम्बर-दिसम्बर) के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को अपने पति की अनुमति से इस नैमित्तिक भक्ति को तप के व्रत

सहित प्रारम्भ करे क्योंकि इससे सभी मनोकामनाएँ पूरी हो सकती हैं। भगवान् विष्णु की उपासना करने के पूर्व स्त्री को चाहिए कि वह मरुतों के जन्म की कथा को सुने। योग्य ब्राह्मणों के निर्देशानुसार वह प्रातःकाल अपने दाँत साफ करे, नहाए, श्वेत साड़ी पहने और आभूषण धारण करे और फिर कलेवा करने के पूर्व भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मी की पूजा करे।

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते ।
महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

अलम्—पर्याप्त; ते—तुम्हारे लिए; निरपेक्षाय—उदासीन; पूर्ण-काम—जिसकी कामना सदैव पूर्ण होती है, ऐसे भगवान्; नमः—नमस्कार; अस्तु—हो; ते—तुमको; महा-विभूति—लक्ष्मी के; पतये—पति को; नमः—नमस्कार; सकल-सिद्धये—समस्त सिद्धियों के स्वामी को।

[तब वह भगवान् की इस प्रकार से प्रार्थना करे]—हे भगवन्! आप समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं किन्तु मैं ऐश्वर्य की कामना नहीं करती हूँ। मैं आपको सहज भाव से सादर नमस्कार करती हूँ। आप उन सम्पत्ति की देवी लक्ष्मी देवी के पति और स्वामी हैं, जो समस्त ऐश्वर्यों से युक्त हैं। आप समस्त योग के स्वामी हैं। मैं आपको केवल नमस्कार करती हूँ।

तात्पर्य : भक्त जानता है कि भगवान् की प्रशंसा किस प्रकार की जाए—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

“श्रीभगवान् परम पूर्ण हैं अतः उनके समस्त उद्गम या उनका व्यवहार-जगत समग्रतः पूर्ण से युक्त है। जो कुछ पूर्ण से उत्पन्न होता है, वह भी स्वयं में पूर्ण होता है। चूँकि भगवान् परम पूर्ण हैं इसलिए उनसे अनेक पूर्ण इकाइयाँ उद्गत होने पर भी वे पूर्ण शेष बचे रहते हैं।” इसलिए परमेश्वर की शरण में जाने की आवश्यकता होती है। भक्त की जो भी आवश्यकताएँ होती हैं पूर्ण श्रीभगवान् उसकी पूर्ति करते हैं (तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्)। इसलिए शुद्ध भक्त

भगवान् से किसी वस्तु की याचना नहीं करेगा। वह केवल उन्हें नमस्कार करता है और भक्त द्वारा जो भी अर्पित किया जाता है भले ही *पत्रं पुष्पं फलं तोयम्* ही क्यों न हो, भगवान् उसे स्वीकार करते हैं। किसी बनावटी प्रयास को करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। उत्तम यही होता है कि सीधे-सादे ढंग से जो भी प्राप्त हो सके उसे भगवान् को आदरभाव से नमस्कारपूर्वक अर्पित किया जाये। भगवान् अपने भक्तों को समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने में पूर्णतया सक्षम हैं।

यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिमौजसा ।

जुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान्प्रभुः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; त्वम्—तुम; कृपया—कृपा से; भूत्या—ऐश्वर्य से; तेजसा—तेज से; महिम-ओजसा—महिमा तथा बल से; जुष्टः—युक्त; ईश—हे ईश्वर; गुणैः—दिव्य गुणों से; सर्वैः—समस्त; ततः—अतः; असि—हो; भगवान्—श्रीभगवान्; प्रभुः—स्वामी।

हे भगवन्! आप अहैतुकी कृपा, समस्त ऐश्वर्य, समस्त तेज तथा समस्त महिमा, बल एवं दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण हर एक के स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में आगत *ततोऽसि भगवान् प्रभुः* शब्दों का अर्थ इस प्रकार है, “अतः आप प्रत्येक के स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।” श्रीभगवान् छह प्रकार के ऐश्वर्यों से पूर्ण होने के साथ-साथ अपने भक्तों पर अत्यन्त दयालु हैं। यद्यपि वे पूर्ण हैं, किन्तु फिर भी वे चाहते हैं कि सभी जीवात्माएँ उनकी शरण में आकर उनकी सेवा करें। इस प्रकार से वे प्रसन्न होते हैं। यद्यपि वे स्वयं में पूर्ण हैं, तो भी अपने भक्तों द्वारा *पत्रं पुष्पं फलं तोयम्* भक्तिपूर्वक अर्पित किये जाने पर प्रसन्न होते हैं। कभी-कभी भगवान् अपने भक्त से भोजन माँगते हैं जैसे कि वे भूखे हों जिस प्रकार माता यशोदा से भगवान् कृष्ण। कभी-कभी वे अपने भक्तों को स्वप्न में बता देते हैं कि उनका मन्दिर तथा उनका बगीचा अब जीर्ण हो चुके हैं जिससे वे उनका उपयोग अच्छी तरह से नहीं कर सकते। इस प्रकार वे भक्तों से उनकी मरम्मत के लिए कहते हैं। कभी-कभी वे पृथ्वी के अन्दर गाड़ दिये जाने पर स्वयं बाहर आने में असमर्थ बताकर अपने भक्तों से उनकी रक्षा करने को कहते

हैं। कभी-कभी अपने भक्तों से पूरे विश्व में घूमकर उनके यश का प्रचार करने के लिए कहते हैं यद्यपि वे अकेले इस कार्य को करने में सक्षम हैं। यद्यपि श्रीभगवान् सभी धन-धान्य से सम्पन्न और आत्म-निर्भर हैं, किन्तु फिर भी वे अपने भक्तों पर आश्रित रहते हैं। अतः भगवान् तथा उनके भक्तों का सम्बन्ध अत्यन्त गुह्य है। केवल भक्त ही जान पाते हैं कि सम्पूर्ण होकर भी भगवान् किसी विशेष कार्य के लिए किस प्रकार भक्तों पर आश्रित रहते हैं। इसकी व्याख्या भगवद्गीता (११.३३) में की गई है जहाँ श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं—*निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्*—हे अर्जुन! तुम केवल युद्ध के निमित्त (कारण) बनो।” यद्यपि श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र युद्ध में अकेले जीत सकने की क्षमता रखते थे, किन्तु फिर भी उन्होंने अपने भक्त अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित किया और जीत का कारण बनने के लिए कहा। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने नाम तथा सन्देश को सारे विश्व में प्रसारित करने में पूर्ण सक्षम थे, किन्तु फिर भी इसके लिए वे अपने भक्तों पर निर्भर रहे। इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् की आत्मनिर्भरता का सब से महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे अपने भक्तों पर निर्भर हैं। यही उनकी अहैतुकी कृपा कहलाती है। जिस भक्त ने भगवान् की इस अहैतुकी कृपा को अनुभव द्वारा देखा है, वही स्वामी तथा दास को समझ सकता है।

विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे ।

प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

विष्णु-पत्नि—हे भगवान् विष्णु की पत्नी; महा-माये—हे भगवान् विष्णु की शक्ति; महा-पुरुष-लक्षणे—भगवान् विष्णु के गुणों एवं ऐश्वर्यों से युक्त; प्रीयेथा:—कृपापूर्वक प्रसन्न हों; मे—मुझ पर; महा-भागे—हे लक्ष्मी की देवी; लोक-मातः—हे संसार की माता; नमः—नमस्कार; अस्तु—हो; ते—तुमको।

[भगवान् विष्णु को समुचित नमस्कार करने के बाद भक्तों को चाहिए कि वे धन-धान्य की देवी लक्ष्मी माता को सादर नमस्कार करें और इस प्रकार से प्रार्थना करें—] हे विष्णु-पत्नी, हे भगवान् विष्णु की अंतरंगा शक्ति! आप विष्णु के ही समान श्रेष्ठ हैं क्योंकि आपमें भी उनके सारे गुण तथा ऐश्वर्य निहित हैं। हे धन-धान्य की देवी! आप मुझ पर

कृपालु हों। हे जगन्माता! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् नाना शक्तियों से पूर्ण हैं (परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते)। चूँकि माता लक्ष्मी भगवान् की बहुमूल्य शक्ति हैं इसलिए उन्हें यहाँ पर महा-माये कहकर सम्बोधित किया गया है। माया शब्द का अर्थ है शक्ति। भगवान् विष्णु अपनी प्रमुख शक्ति के बिना सर्वत्र अपनी शक्ति का प्रदर्शन नहीं कर पाते। कहा गया है शक्ति शक्तिमान् अभेद—शक्ति तथा शक्तिमान एक ही हैं अतः माता लक्ष्मी भगवान् विष्णु की नित्य संगिनी हैं, वे दोनों निरन्तर साथ रहते हैं कोई भी भगवान् विष्णु के बिना लक्ष्मी को अपने घर में नहीं रख सकता। यदि कोई ऐसा सोचे तो उसके लिए यह घातक होगा क्योंकि भगवान् की सेवा के बिना लक्ष्मी माया बन जाती है। किन्तु भगवान् विष्णु के संग वे निस्सन्देह परा शक्ति हैं।

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपहरामीति;
अनेनाहरहर्मन्त्रेण
विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवासउपवीतविभूषणगन्धपुष्पधूप दीपोपहाराद्युपचारान्सुसमाहि
तोपाहरेत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

ॐ—हे भगवान्; नमः—नमस्कार; भगवते—श्रीभगवान् को, जो छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं; महा-पुरुषाय—श्रेष्ठ भोक्ता; महा-अनुभावाय—सर्वशक्तिमान; महा-विभूति—धन की देवी के; पतये—पति; सह—साथ; महा-विभूतिभिः—पार्षद; बलिम्—भेंट; उपहरामि—अर्पित कर रहा हूँ; इति—इस प्रकार; अनेन—इस; अहः-अहः—प्रतिदिन; मन्त्रेण—मंत्र से; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; आवाहन—आवाहन; अर्घ्य-पाद्य-उपस्पर्शन—हाथ, पाँवों तथा मुँह को प्रक्षालित करने के लिए जल; स्नान—नहाने के लिए जल; वास—वस्त्र; उपवीत—यज्ञोपवीत, जनेऊ; विभूषण—गहने; गन्ध—सुगन्धित द्रव्य; पुष्प—फूल; धूप—धूप; दीप—दीपक; उपहार—भेंट; आदि—इत्यादि; उपचारान्—निवेदन, भेंट; सु-समाहिता—मनोयोग से; उपाहरेत्—अर्पित करे।

“हे छः ऐश्वर्यों से युक्त भगवान् विष्णु! आप सर्वश्रेष्ठ भोक्ता एवं सर्व-शक्तिमान हैं। हे माता लक्ष्मी के पति! मैं विश्वक्सेन जैसे पार्षदों की संगति में रहने वाले आपको सादर नमस्कार करता हूँ। मैं आपको समस्त पूजा-सामग्री अर्पित करता हूँ।” मनुष्य को चाहिए कि प्रतिदिन अत्यन्त मनोयोग से भगवान् विष्णु की पूजा-यथा उनके हाथ, पाँव तथा मुख धोने के लिए और स्नान के लिए जल इत्यादि पूजा सामग्रियों से पूजा करते हुए इस मंत्र का

उच्चारण करे। उसे चाहिए कि उन्हें वस्त्र, उपवीत, आभूषण, सुगंधि, पुष्प, अगुरु तथा दीपक अर्पित करे।

तात्पर्य : यह मंत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। श्रीविग्रह की पूजा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उपर्युक्त मंत्र का जप करना चाहिए।

हविःशेषं च जुहुयादनले द्वादशाहुती ।

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

हविः-शेषम्—शेष नैवेद्य; च—तथा; जुहुयात्—अर्पित करे; अनले—अग्नि में; द्वादश—बारह; आहुतीः—आहुतियाँ; ॐ—हे भगवान्; नमः—नमस्कार; भगवते—श्रीभगवान् को; महा-पुरुषाय—परम भोक्ता; महा-विभूति—धन की देवी के; पतये—पति को; स्वाहा—आहुति; इति—इस प्रकार।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा—उपर्युक्त समस्त पूजा सामग्री से भगवान् की पूजा करने के बाद मनुष्य को चाहिए कि वह “ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा ” इस मंत्र का जप करे और पवित्र अग्नि में बारह बार घी की आहुतियाँ दे।

श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ ।

भक्त्या सम्पूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसम्पदः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्रियम्—सौभाग्य की देवी को; विष्णुम्—भगवान् विष्णु को; च—तथा; वर-दौ—वरों को देने वाली; आशिषाम्—आशीर्वादों का; प्रभवौ—साधन; उभौ—दोनों; भक्त्या—भक्ति से; सम्पूजयेत्—पूजे; नित्यम्—प्रतिदिन; यदि—यदि; इच्छेत्—चाहता है; सर्व—समस्त; सम्पदः—ऐश्वर्य।

यदि किसी को समस्त ऐश्वर्यों की चाहत है, तो उसका कर्तव्य है कि प्रतिदिन भगवान् विष्णु की पूजा उनकी पत्नी लक्ष्मी सहित करे। उसे परम आदर से उपर्युक्त विधि से उनकी पूजा करनी चाहिए। भगवान् विष्णु तथा ऐश्वर्य की देवी का अत्यन्त शक्तिशाली संयोग है। वे समस्त वरों को देने वाले हैं तथा समस्त सौभाग्य के स्रोत हैं। अतः हर एक का कर्तव्य है कि लक्ष्मी-नारायण की पूजा करे।

तात्पर्य : लक्ष्मी-नारायण अर्थात् भगवान् विष्णु तथा माता लक्ष्मी सबों के हृदय में सदैव

विराजमान रहते हैं (ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति) । किन्तु अभक्त लोग यह नहीं समझते कि भगवान् विष्णु अपनी प्रेयसी लक्ष्मी के साथ सबों के हृदयों में स्थित हैं, अतः उन्हें विष्णु का ऐश्वर्य प्राप्त नहीं होता। पाखंडी लोग कभी-कभी दरिद्र मनुष्य को दरिद्रनारायण कहकर पुकारते हैं। यह अत्यन्त अवैज्ञानिक है। भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मी सदैव प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में स्थित रहते हैं, विशेष रूप से उनके हृदय में जो दरिद्र नहीं हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति नारायण है। नारायण के प्रसंग में इस शब्द का व्यवहार अत्यन्त कुत्सित हैं। भगवान् कभी दरिद्र नहीं बनते, अतः वे कभी दरिद्रनारायण नहीं कहे जा सकते। वे तो सबों के हृदय में विद्यमान हैं, किन्तु वे न तो दरिद्र हैं न धनी। केवल ऐसे धूर्त लोग जो नारायण के ऐश्वर्य को नहीं जानते उन पर दरिद्रता का आघात पहुंचाने का प्रयास करते हैं।

प्रणमेदण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा ।

दशवारं जपेन्मन्त्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

प्रणमेत्—नमस्कार करना चाहिए; दण्ड-वत्—दण्ड के समान; भूमौ—भूमि पर; भक्ति—भक्ति से; प्रह्वेण—विनीत; चेतसा—भाव से; दश-वारम्—दस बार; जपेत्—उच्चारण करना चाहिए; मन्त्रम्—मंत्र; ततः—तब; स्तोत्रम्—प्रार्थना; उदीरयेत्—जप करे।

भक्ति के साथ विनीत भाव से भगवान् को नमस्कार करना चाहिए। भूमि पर दण्ड के समान गिरते समय (दण्डवत करते हुए) उपर्युक्त मंत्र का दस बार उच्चारण करना चाहिए। तब उसे निम्नानुसार प्रार्थना करनी चाहिए।

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् ।

इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरत्यया ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

युवाम्—तुम दोनों; तु—निस्सन्देह; विश्वस्य—ब्रह्माण्ड के; विभू—स्वामी; जगतः—जगत के; कारणम्—कारण; परम्—सर्वश्रेष्ठ; इयम्—यह; हि—निश्चय ही; प्रकृतिः—शक्ति; सूक्ष्मा—समझने में कठिन; माया-शक्तिः—अन्तरंगा शक्ति; दुरत्यया—पार पाना कठिन है।

हे भगवान् विष्णु तथा माता लक्ष्मी! आप दोनों समस्त सृष्टि के स्वामी हैं। वास्तव में इस

सृष्टि के कारण आप ही हैं। माता लक्ष्मी को समझ पाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि वे इतनी शक्तिशाली हैं कि उनकी शक्ति की सीमा का पार पाना कठिन है। माता लक्ष्मी को भौतिक जगत में बहिरंगा शक्ति के रूप में अंकित किया जाता है, परन्तु वास्तव में वे सदैव ईश्वर की अन्तरंगा शक्ति हैं।

तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्वमेव पुरुषः परः ।

त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसका; अधीश्वरः—स्वामी; साक्षात्—प्रत्यक्षतः; त्वम्—तुम; एव—निश्चय ही; पुरुषः—पुरुष; परः—परम; त्वम्—तुम; सर्व-यज्ञः—साक्षात् यज्ञ; इज्या—पूजा; इयम्—यह (लक्ष्मी); क्रिया—कार्यकलाप; इयम्—यह; फल-भुक्—फलों के भोक्ता; भवान्—आप।

हे ईश्वर, आप शक्ति के स्वामी हैं, अतः आप परम पुरुष हैं। आप साक्षात् यज्ञ हैं।

आत्मक्रिया की प्रतिरूप लक्ष्मी आपको अर्पित उपासना की आदि रूपा हैं, जबकि आप समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं।

गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग्भवान् ।

त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशयाः ।

नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

गुण-व्यक्तिः—गुणों का आगार; इयम्—यह; देवी—देवी; व्यञ्जकः—प्रकाशक, प्रकट करने वाले; गुण-भुक्—गुणों के भोक्ता; भवान्—आप; त्वम्—तुम; हि—निस्सन्देह; सर्व-शरीरी आत्मा—समस्त जीवात्माओं की परम आत्मा; श्रीः—ऐश्वर्य की देवी; शरीर—शरीर, देह; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; आशयाः—तथा मन; नाम—नाम; रूपे—तथा रूप; भगवती—लक्ष्मी; प्रत्ययः—प्रकाशक; त्वम्—तुम; अपाश्रयः—आधार।

यहाँ पर उपस्थित माता लक्ष्मी समस्त गुणों की आगार हैं जबकि आप इन गुणों के प्रकाशक तथा भोक्ता हैं। दरअसल, आपही प्रत्येक वस्तु के भोक्ता हैं। आप समस्त जीवात्माओं के परमात्मा के रूप में रहते हैं और लक्ष्मी देवी उनके शरीर, इन्द्रिय तथा मन का रूप हैं। उनके भी पवित्र नाम तथा रूप हैं और आप समस्त नामों तथा रूपों के आधार हैं। आप उनके प्रकाशन का कारण हैं।

तात्पर्य : तत्त्ववादियों के आचार्य, मध्वाचार्य ने इस श्लोक का वर्णन इस प्रकार किया है, “विष्णु को साक्षात् यज्ञ के रूप में और माता लक्ष्मी को आध्यात्मिक कार्य तथा उपासना के आद्य रूप में वर्णित किया जाता है। निस्सन्देह, वे आध्यात्मिक कार्य तथा समस्त यज्ञों के परम-आत्मा रूप को बताने वाले हैं। भगवान् विष्णु लक्ष्मी देवी के भी परमात्मा रूप हैं किन्तु भगवान् विष्णु का परमात्मा नहीं हो सकता क्योंकि विष्णु भगवान् स्वयं ही सब जीवों के दिव्य परमात्मा हैं।”

मध्वाचार्य के अनुसार दो प्रकार के कारक या तत्त्व हैं—एक स्वतंत्र और दूसरा आश्रित। पहला तत्त्व परमेश्वर विष्णु है और तत्त्व दूसरा जीव है। लक्ष्मी देवी की गणना कभी-कभी जीवों में की जाती है क्योंकि वे भगवान् विष्णु पर आश्रित हैं। किन्तु गौड़ीय वैष्णव लक्ष्मी देवी को निम्न रूप से वर्णित करते हैं, जो बलदेव विद्याभूषणकृत *प्रमेयरत्नावली* के दो श्लोकों में दिया हुआ है। इनमें से पहला श्लोक *विष्णुपुराण* से उद्धृत है

नित्यैव सा जगन्माता विष्णोः श्रीरपायिनी ।

यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ॥

विष्णो स्युः शक्तयस्तिस्त्रस्तासु या कीर्तिता परा ।

सैव श्रीस्तदभिन्नेति प्राह शिष्यान् प्रभुर्महान् ॥

“हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! लक्ष्मी जी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की चिरसंगिनी हैं इसलिए उन्हें अनपायिनी कहा जाता है। वे समस्त सृष्टि की माता हैं। जिस प्रकार भगवान् विष्णु सर्वव्यापी हैं उसी प्रकार उनकी आत्मपराशक्ति माता लक्ष्मी जी भी सर्वव्यापी हैं। भगवान् विष्णु की तीन प्रमुख शक्तियाँ हैं—अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था। श्री चैतन्य महाप्रभु ने पराशक्ति को भगवान् से अभिन्न माना है। इस प्रकार (लक्ष्मी) भी स्वतंत्र विष्णु तत्त्व में सम्मिलित हैं।”

प्रमेयरत्नावली की कान्तिमाला टीका में यह कथन है—*ननु क्वचित् नित्य-मुक्त-जीवात्वं लक्ष्म्याः स्वीकृतं, तत्राह—प्राहेति । नित्यैवेति पद्ये सर्व-व्याप्ति-कथनेन कला-काष्ठेत्यादि-पद्य-द्वये, शुद्धोऽपीत्युक्तं च महाप्रभुना स्वशिष्यान् प्रतिक्ष्मा भगवदद्वैतम् उपदिष्टम् । क्वचित् यत् तस्यास्तु द्वैतम्*

उक्तं, तत् तु तदाविष्ट-नित्य-मुक्त-जीवम् आदाय संगतमस्तु। यद्यपि कुछ अधिकारिक वैष्णवशिष्य-परम्पराएँ लक्ष्मी देवी को वैकुण्ठ की शाश्वत मुक्तात्माओं (जीवों) में परिगणित करती हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने विष्णु पुराण के कथननुसार लक्ष्मी को विष्णुतत्त्व से अभिन्न माना है। इसका सही निष्कर्ष यह है कि विष्णु से भिन्न होने का लक्ष्मी का वर्णन तब किया जाता है जब शाश्वत मुक्त जीवात्मा में लक्ष्मी के गुण पाये जाते हैं, उस वर्णन का अभिप्राय भगवान् विष्णु की प्रेयसी लक्ष्मी से कदापि नहीं है।”

यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ ।

तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महाशिषः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

यथा—चूँकि; युवाम्—तुम दोनों; त्रि-लोकस्य—तीनों लोकों में; वर-दौ—वर देने वाले, वरदानी; परमे-ष्ठिनौ—परम शासक; तथा—अतः; मे—मेरा; उत्तम-श्लोक—उत्तम श्लोकों से वन्दित, हे भगवान्; सन्तु—हों; सत्याः—पूर्ण; महा-आशिषः—बड़ी बड़ी अभिलाषाएँ।

आप दोनों ही तीनों लोकों के परम अधिष्ठाता एवं वरदाता हैं, अतः हे उत्तमश्लोक

भगवान्! आपके अनुग्रह से मेरी अभिलाषाएँ पूर्ण हों।

इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह ।

तन्निःसार्योपहरणं दत्त्वाचमनमर्चयेत् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अभिष्टूय—स्तुति करके; वर-दम्—वर देने वाले को; श्री-निवासम्—ऐश्वर्य की देवी के धाम, भगवान् विष्णु को; श्रिया सह—लक्ष्मी सहित; तत्—तब; निःसार्य—हटाकर; उपहरणम्—पूजा की सामग्री; दत्त्वा—अर्पित करके; आचमनम्—हाथ तथा मुँह धोने का जल; अर्चयेत्—पूजा करे।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा—इस प्रकार श्रीनिवास भगवान् विष्णु की पूजा ऐश्वर्य की देवी माता लक्ष्मी जी के साथ साथ उपर्युक्त विधि से स्तुतियों द्वारा की जाये। फिर पूजा की सारी सामग्री हटाकर उनका हाथ-मुँह धुलाने के लिये जल अर्पित करे और फिर से उनकी पूजा करे।

ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा ।
यज्ञोच्छिष्टमवघ्नाय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; स्तुवीत—स्तुति करे; स्तोत्रेण—प्रार्थना से; भक्ति—भक्ति से; प्रह्वेण—विनम्र; चेतसा—मन से; यज्ञ-
उच्छिष्टम्—यज्ञावशेष; अवघ्नाय—सूँघकर; पुनः—फिर; अभ्यर्चयेत्—पूजा करे; हरिम्—भगवान् विष्णु की।

तत्पश्चात् अत्यन्त भक्ति एवं विनीत भाव से मनुष्य भगवान् तथा लक्ष्मी की स्तुति करे।

तब यज्ञावशेष को सूँघकर विष्णु तथा लक्ष्मी की पुनः पूजा करे।

पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ।
प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत्प्रेमशीलः स्वयं पतिः ।
बिभृयात्सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

पतिम्—पति; च—तथा; परया—परम; भक्त्या—भक्ति से; महा-पुरुष-चेतसा—परम पुरुष मानकर; प्रियैः—प्रिय; तैः
तैः—उन उन (भेंटों) से; उपनमेत्—उपासना करे; प्रेम-शीलः—प्रेमपूर्वक; स्वयम्—स्वयं; पतिः—पति; बिभृयात्—
सम्पन्न करे; सर्व-कर्माणि—सारे कार्य; पत्न्याः—पत्नी के; उच्च-अवचानि—उच्च तथा निम्न, छोटे बड़े; च—तथा।

पत्नी अपने पति को परमेश्वर का प्रतिनिधि मानकर और उसे प्रसाद देकर विशुद्ध भक्ति से उसकी पूजा करे। पति भी अपनी पत्नी से परम प्रमुदित होकर अपने परिवार के कार्यों में लग जाए।

तात्पर्य : उपर्युक्त विधि से पति तथा पत्नी के पारिवारिक सम्बन्ध आध्यात्मिक रूप में स्थापित होने चाहिए।

कृतमेकतरेणापि दम्पत्योरुभयोरपि ।
पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत्समाहितः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

कृतम्—किया गया; एकतरेण—एक के द्वारा; अपि—भी; दम्-पत्योः—पति तथा पत्नी का; उभयोः—दोनों; अपि—तो
भी; पत्न्याम्—जब पत्नी; कुर्यात्—उसे करना चाहिए, वह करे; अनर्हायाम्—अक्षम; पतिः—पति; एतत्—यह;
समाहितः—मनोयोग से।

पति-पत्नी दोनों में से कोई एक इस भक्ति को निष्पादित कर सकता है। उनके मधुर सम्बन्धों के कारण दोनों को फल मिलता है। अतः यदि पत्नी इस व्रत को करने में असमर्थ

हो तो पति सावधानी से इसे करे। इससे उसकी आज्ञाकारिणी पत्नी को भी उसका फल मिलेगा।

तात्पर्य : जब पत्नी आज्ञाकारिणी और पति एकनिष्ठ होता है, तो उनके बीच मधुर सम्बन्ध दृढ़ता से स्थापित हो जाते हैं। तब, यदि पत्नी दुर्बल होने के कारण पति के साथ भक्ति नहीं भी कर सकती, तो भी उसके पति के कार्यों में उसका आधा हिस्सा रहता है यदि वह पतिव्रता और पवित्र हो।

विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात्कथञ्चन ।
विप्रान्स्त्रियो वीरवतीः स्त्रगन्धबलिमण्डनैः ।
अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थिता ॥ १९ ॥
उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ।
अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामसमृद्धये ॥ २० ॥

शब्दार्थ

विष्णोः—विष्णु का; व्रतम्—व्रत; इदम्—यह; बिभ्रत्—करते हुए; न—नहीं; विहन्यात्—भंग करे; कथञ्चन—किसी कारण से; विप्रान्—ब्राह्मण; स्त्रियः—स्त्रियों; वीर-वतीः—पतियों तथा पुत्रों से युक्त; स्त्रक्—मालाओं; गन्ध—चंदन; बलि—भोजन की भेंट; मण्डनैः—तथा आभूषणों से; अर्चेत्—पूजा करे; अहः-अहः—नित्यप्रति; भक्त्या—भक्ति से; देवम्—भगवान् विष्णु; नियमम्—विधि-विधान; आस्थिता—पालन करते हुए; उद्वास्य—रखकर; देवम्—भगवान् को; स्वे—उनके अपने; धाम्नि—घर में; तत्—उसको; निवेदितम्—अर्पित; अग्रतः—दूसरों को बाँट कर; अद्यात्—खाए; आत्म-विशुद्धि-अर्थम्—आत्मशुद्धि के लिए; सर्व-काम—समस्त अभिलाषाएँ; समृद्धये—पूर्ण करने के लिए।

मनुष्य को चाहिए कि इस भक्तिपूर्ण विष्णु-व्रत को माने और किसी अन्य कार्य में व्यस्त होने के लिए इसके पालन से विचलित न हो। उसे चाहिए कि नित्यप्रति ब्राह्मणों तथा उन सौभाग्यवती स्त्रियों अर्थात् अपने पतियों के साथ शान्तिपूर्वक रहने वाली स्त्रियों को बचा हुआ प्रसाद, पुष्प माला, चन्दन तथा आभूषण अर्पित करके उनकी पूजा करे। पत्नी को चाहिए कि अत्यन्त भक्तिपूर्वक विधि-विधानों के अनुसार भगवान् विष्णु की पूजा करे। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु को शयन कराए और इसके बाद प्रसाद ग्रहण करे। इस प्रकार पति तथा पत्नी परिशुद्ध हो जाएंगे और उनकी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।

एतेन पूजाविधिना मासान्द्वादश हायनम् ।
नीत्वाथोपरमेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एतेन—इससे; पूजा-विधिना—पूजा की विधि से; मासान् द्वादश—बारह मास; हायनम्—एक वर्ष; नीत्वा—बिताकर;
अथ—फिर; उपरमेत्—उपवास करे; साध्वी—एकनिष्ठ पत्नी; कार्तिके—कार्तिक मास में; चरमे अहनि—अन्तिम दिन।

साध्वी स्त्री को चाहिए कि एक वर्ष के लिए इस भक्तिमय सेवा को निरन्तर करे। जब एक वर्ष बीत जाये तो उसे चाहिए कि कार्तिक मास (अक्टूबर-नवम्बर) की पूर्णिमा को उपवास करे।

श्वोभूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ।
पयःश्रुतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ।
पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्वः-भूते—उसके दूसरे दिन प्रातःकाल; अपः—जल; उपस्पृश्य—छू कर; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; अभ्यर्च्य—पूजा कर; पूर्व-वत्—पहले की तरह; पयः-श्रुतेन—उबाले हुए दूध से; जुहुयात्—अर्पित करे; चरुणा—खीर; सह—सहित; सर्पिषा—घी; पाक-यज्ञ-विधानेन—‘गृह्य सूत्रों’ के आदेशानुसार; द्वादश—बारह; एव—निश्चय ही; आहुतीः—आहुतियाँ; पतिः—पति।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान करके और भगवान् कृष्ण की पूर्ववत् पूजा करके गुह्य-सूत्रों के निर्देशानुसार वर्णित भोजन बनाए जैसा उत्सवों पर बनाया जाता है। घी से खीर तैयार करे और पति को चाहिए कि वह इस सामग्री से अग्नि में बारह बार आहुति दे।

आशिषः शिरसादाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः ।
प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तदनुज्ञया ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

आशिषः—आशीर्वाद; शिरसा—शिर से; आदाय—स्वीकार करके; द्विजैः—ब्राह्मणों के द्वारा; प्रीतैः—प्रसन्न;
समीरिताः—उच्चरित; प्रणम्य—प्रणाम करके; शिरसा—शिर के बल; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; भुञ्जीत—भोजन ग्रहण करे;
तत्-अनुज्ञया—उनकी अनुमति से।

तत्पश्चात् वह (पति) ब्राह्मणों को संतुष्ट करे और जब ब्राह्मण प्रसन्न होकर आशीर्वाद दें तो अपने शिर के द्वारा उन्हें सादर प्रणाम करे और उनकी अनुमति लेकर प्रसाद ग्रहण करे।

आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः ।
दद्यात्पत्यै चरोः शेषं सुप्रजास्त्वं सुसौभागम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

आचार्यम्—आचार्य को; अग्रतः—सर्वप्रथम; कृत्वा—समुचित स्वागत करके; वाक्-यतः—वाणी को वश में करते हुए; सह—साथ; बन्धुभिः—मित्रों तथा स्वजनों के साथ; दद्यात्—प्रदान करे; पत्यै—पत्नी को; चरोः—खीर की आहुति का; शेषम्—शेष भाग; सु-प्रजास्त्वम्—जिससे अच्छी सन्तान निश्चित हो; सु-सौभागम्—जिससे सौभाग्य प्राप्त हो।

पति को चाहिए कि भोजन करने के पूर्व सर्वप्रथम आचार्य को सुखद आसन दे और अपने मित्रों तथा स्वजनों के साथ, वाणी को वश में रखते हुए गुरु को प्रसाद भेंट करे। तब पत्नी को चाहिए कि घी में पकाई गई खीर की आहुति से बचे भाग को खाए। इस अवशेष को खाने से विद्वान तथा भक्त पुत्र की और समस्त सौभाग्य की प्राप्ति निश्चित हो जाती है।

एतच्चरित्वा विधिवद्ब्रतं विभो-
रभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ।
स्त्री चैतदास्थाय लभेत सौभागं
श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; चरित्वा—करके; विधि-वत्—शास्त्रानुमोदित विधि से; ब्रतम्—ब्रत; विभोः—भगवान् से; अभीप्सित—वांछित; अर्थम्—वस्तु; लभते—प्राप्त करता है; पुमान्—पुरुष; इह—इस जीवन में; स्त्री—स्त्री; च—तथा; एतत्—यह; आस्थाय—करके; लभेत—प्राप्त कर सकती है; सौभागम्—सौभाग्य; श्रियम्—ऐश्वर्य; प्रजाम्—संतति; जीव-पतिम्—दीर्घजीवी पति; यशः—ख्याति; गृहम्—घर।

यदि इस ब्रत या अनुष्ठान को शास्त्र सम्मत विधि के अनुसार किया जाये तो इसी जीवन में मनुष्य को ईश्वर से मनवांछित आशीष (वर) प्राप्त हो सकते हैं। जो पत्नी इस अनुष्ठान को करती है उसे अवश्य ही सौभाग्य, ऐश्वर्य, पुत्र, दीर्घजीवी पति, ख्याति तथा अच्छा घरबार प्राप्त होता है।

तात्पर्य : आज भी बंगाल में यदि कोई स्त्री दीर्घकाल तक अपने पति के साथ-साथ जीवित रहती है, तो उसे अत्यन्त भाग्यशाली माना जाता है। एक स्त्री सामान्यतः अच्छा पति, अच्छी संतान, अच्छा घर, धन, ऐश्वर्य इत्यादि की कामना करती है। इस श्लोक में की गई संस्तुति के अनुसार स्त्री तथा पुरुष दोनों को ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से मनवांछित वर प्राप्त होंगे। इस

विशेष प्रकार का व्रत रखकर कृष्णभक्ति से पुरुष तथा स्त्री दोनों इस संसार में सुखी रहेंगे और कृष्ण भावनाभावित होने के कारण वैकुण्ठ जगत में भेजे जाएँगे।

कन्या च विन्देत समग्रलक्षणं
 पतिं त्ववीरा हतकिल्बिषां गतिम् ।
 मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी
 सुदुर्भगा सुभगा रूपमच्छयम् ॥ २६ ॥
 विन्देद्विरूपा विरुजा विमुच्यते
 य आमयावीन्द्रियकल्यदेहम् ।
 एतत्पठन्नभ्युदये च कर्म-
 ण्यनन्ततृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥ २७ ॥
 तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान्
 होमावसाने हुतभुक्श्रीहरिश्च ।
 राजन्महन्मरुतां जन्म पुण्यं
 दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

कन्या—अविवाहित लड़की; च—तथा; विन्देत—प्राप्त कर सकती है; समग्रलक्षणम्—समस्त अच्छे गुणों वाला; पतिम्—पति को; तु—और; अवीरा—पति या पुत्र रहित स्त्री; हत-किल्बिषाम्—दोषरहित; गतिम्—गन्तव्य; मृत-प्रजा—स्त्री जिसके पुत्र मर चुके हैं; जीव-सुता—दीर्घजीवी पुत्रों वाली; धन-ईश्वरी—धनवान; सु-दुर्भगा—अभागी; सु-भगा—भाग्यवान; रूपम्—सुन्दरता; अछयम्—श्रेष्ठ; विन्देत्—प्राप्त कर सकती है; विरूपा—कुरूप स्त्री; विरुजा—रोग से; विमुच्यते—मुक्त हो जाती है; यः—जो; आमया-वी—रुग्ण पुरुष; इन्द्रिय-कल्य-देहम्—हृष्ट पुष्ट देह; एतत्—यह; पठन्—सुनाना; अभ्युदये च कर्मणि—तथा यज्ञ में जिसमें पितरों तथा देवों को आहुति दी जाती है; अनन्त—अपार; तृप्तिः—तुष्टि; पितृ-देवतानाम्—पितरों तथा देवताओं के; तुष्टाः—प्रसन्न होकर; प्रयच्छन्ति—प्रदान करते हैं; समस्त—सभी; कामान्—इच्छाएँ; होम-अवसाने—इस अनुष्ठान के पूर्ण हो जाने पर; हुत-भुक्—यज्ञ का भोक्ता; श्री-हरिः—भगवान् विष्णु; च—तथा; राजन्—हे राजा; महत्—महान्; मरुताम्—मरुतों का; जन्म—जन्म; पुण्यम्—पवित्र; दितेः—दिति का; व्रतम्—व्रत; च—भी; अभिहितम्—कहा गया; महत्—महान्; ते—तुमसे।

यदि अविवाहित कन्या इस व्रत को रखती है, तो उसे सुन्दर पति मिल सकता है। यदि अवीरा स्त्री (जिसका कोई पति या पुत्र नहीं है) इस अनुष्ठान को करती है, तो उसे वैकुण्ठ जगत को भेजा जा सकता है। जिस स्त्री की संतानें जन्म लेने के बाद मर चुकी हों, उसे दीर्घजीवी सन्तान के साथ ही साथ सम्पत्ति भी प्राप्त होती है। अभागी स्त्री का भाग्य खुल जाता है और कुरूपा स्त्री सुन्दर हो जाती है। इस व्रत को रखने से रोगी पुरुष को रोग से

मुक्ति मिल सकती है और कार्य करने के लिए स्वस्थ शरीर प्राप्त हो सकता है। यदि इस कथा को कोई अपने पितरों तथा देवों को आहुति देते समय विशेषतया श्राद्ध-पक्ष में सुनाता तो देवता तथा पितृलोक के वासी उससे अत्यन्त प्रसन्न होंगे और उसकी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। इस अनुष्ठान के करने से भगवान् विष्णु तथा माता लक्ष्मी उस पर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। हे राजा परीक्षित! मैंने पूरी तरह से बता दिया है कि दिति ने किस प्रकार इस व्रत को किया और उसे श्रेष्ठ पुत्र—मरुत्गण तथा सुखी जीवन—प्राप्त हुए। मैंने तुम्हें यथाशक्ति विस्तार से सुनाने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध के अन्तर्गत “पुंसवन व्रत का अनुष्ठान” नामक उन्नीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

॥ इति षष्ठः स्कन्धः समाप्तः ॥